बी.आर. अंबेडकर

अनिल एकबोटे

"मैं ऐसे संविधान के लिए संघर्ष करूंगा जो भारत को दासता और संरक्षण से मुक्त करेगा...मैं ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें निर्धन से निर्धन लोग यह महसूस करेंगे कि यह देश उनका है, जिसके निर्माण में उनकी आवाज मायने रखती है। ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें लोगों के उच्च या निम्न वर्ग नहीं होंगे, जहां सभी समुदाय परस्पर सौहार्द के साथ रहेंगे। ऐसे भारत में अस्पृश्यता अथवा मादक पेयों व पदार्थों के अभिशाप के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होंगे...उन हितों की उपेक्षा की जाएगी जो लाखों बेजुबान लोगों के हितों से टकराएंगे।"

महात्मा गांधी

बी.आर. अंबेडकर

सदियों से भारत के हिंदुओं में दलित जातियों के लोग उपेक्षा और घृणा का शिकार होते रहे हैं। समाज से बहिष्कृत ये लोग सवर्ण हिंदुओं द्वारा न केवल तिरस्कृत और तुच्छ समझे जाते रहे बल्कि उनके द्वारा अपमानित भी होते रहे। सवर्ण हिंदुओं द्वारा उन्हें 'अछूत' समझा जाता रहा।

सवर्ण हिंदू इन 'दलित' लोगों को अपनी बस्ती में नहीं रहने देते थे और गांवों के अपने कुओं व तालाबों का पानी तक नहीं छूने देते थे। 'दलितों' के लिए मंदिर में प्रवेश वर्जित था और उन्हें पढ़ाई-लिखाई और शिक्षा से वंचित किया जाता था। अच्छी नौकरियां तथा व्यापार उनके लिए थे ही नहीं। वे गलियां साफ करने, जूते गांठने, टोकरियां बुनने या मरे हुए जानवरों की खाल उतारने जैसे काम ही कर सकते थे। उनमें से कुछ भाग्यशाली लोगों को खेतों या जमींदारों के घरों में वंधुआ मजदूर के रूप में चाकरी करने या गांवों के दफ्तरों में नौकर की हैसियत से काम करने का मौका मिल जाता था। यही नहीं, उनके उठने-बैठने खाने के नियम थे। यह निर्धारित था कि उनके बर्तन और जेवर किन धातुओं से बनाए जाने चाहिए।

इस तरह सैकड़ों वर्षों तक 'दलित' लोग गरीबी, निरक्षरता, कमरतोड़, मेहनत और बखान न की जा सकने वाली तकलीफों से भरी जिंदगी जीते रहे।

महाराष्ट्र के ऐसे ही एक मराठी भाषी 'दलित' 'महार' परिवार में डाक्टर भीमराव अंबेडकर का जन्म हुआ जिन्हें सन् 1990 में देश ने

गर्व अनुभव करते हुए कृतज्ञतापूर्वक सर्वोच्च सम्मान 'भारत-रत्न' से विभूषित किया।

बाल्यावस्था

शिशु भीम का जन्म 14 अप्रैल 1891 को मध्यभारत के महू नामक स्थान पर हुआ। वे रामजी भीमाबाई सकपाल की 14वीं संतान थे। उन्हें स्नेह से सभी भीमा कहकर पुकारते थे और कॉलेज की पढ़ाई पूरी होने के बाद ही भीमराव कहलाए। उनके दादा मालोजी की भांति उनके पिता रामजी सकपाल भी अंगरेज सरकार की सेना में नौकरी करते थे।

उन दिनों अंगरेज सरकार ने सेना में काम करने वालों के लिए शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य बना दिया था। सरकार ने उनकी औरतों व बच्चों के लिए भी स्कूल खोले। मालोजी और रामजी, महार जाति के उन इने गिने सौभाग्यशाली लोगों में से थे जिन्हें शिक्षा का लाभ मिला।

जब भीम दो साल के ही थे, उनके पिता सेना से सेवानिवृत्त हो गए। रामजी ने 14 वर्ष तक मिलिटरी स्कूल के हेडमास्टर के रूप में काम किया था और सेवानिवृत्ति के समय वे सेकंड ग्रिनेडियर्स में 'सूबेदार मेजर' थे। अब उनका परिवार पश्चिमी घाट के तटवर्ती क्षेत्र कोंकण में दपोली नामक स्थान पर आ गया। पांच वर्ष की उम्र में भीम दपोली में स्कूल में भरती हो गए लेकिन जल्दी ही रामजी को सतारा में नौकरी मिल गई और वे परिवार सहित सतारा जाकर रहने लगे। वहां भीम और उनके बड़े भाई आनंद ने छावनी के गवर्नमेंट हाईस्कूल में दाखिला ले लिया।

भीम जब छह वर्ष के थे तो उनकी मां भीमाबाई चल बसीं। तब रामजी की बहन मीराबाई ने परिवार की देखभाल करनी शुरू की। मीराबाई नाटी और कुबड़ी परंतु अच्छे स्वभाव की महिला थीं। रामजी और भीमाबाई के 14 बच्चों में से केवल तीन लड़के और दो

लड़कियां ही जीवित बची थीं। लड़कियों के विवाह हो गए थे और वे अपने-अपने पति के साथ रहती थीं। इसलिए पांचों में सबसे छोटा होने के कारण भीम को सभी चाहते थे।

रामजी सकपाल अनुशासन के बहुत पक्के थे। वे सादा और धार्मिक जीवन बिताते थे। उन्होंने न कभी मांस खाया और न कभी शराब को छुआ, जबकि 'दलितों' में ये दोनों चीजें आम थीं। रामजी चाहते थे कि उनके बच्चों की पढ़ाई-लिखाई में रूचि हो और वे सच्चरित्र बनें। प्रभातबेला में वे बच्चों से भजन गवाया करते थे और उन्हें रामायण तथा महाभारत की कहानियां सुनाया करते थे। उन्होंने अपने बच्चों को संत नामदेव, तुकाराम, मोरोपंत तथा मुक्तेश्वर द्वारा रचित कविताएं और गीत याद करवाए। प्रतिदिन शाम को रामजी तथा उनके बच्चे मिलकर भजन गाते। दैनिक धार्मिक कृत्य से तो भीम के मन और आत्मा पर अच्छा प्रभाव पड़ा ही साथ ही इससे उन्हें शुद्ध मराठी भाषा का अच्छा ज्ञान भी हो गया।

रामजी सकपाल ज्योतिबा फुले के मित्र और प्रशंसक थे। जो कि 'दलितों' में शिक्षा का प्रचार करने तथा ऊंची जातियों के हिंदुओं में उन्हें सामाजिक स्वीकृति दिलाने की दिशा में काम कर रहे थे। रामजी ज्योतिबा से बहुत प्रभावित थे अतः वे 'दलित' भाइयों की सहायता का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे और इस प्रकार उन्होंने अपने बच्चों के सामने अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया।

'अछूत'

रामजी सकपाल ने एक विधवा जीजाबाई से पुनर्विवाह किया और उसे घर ले गए। परंतु बालक भीम के मन में अपनी सौतेली मां के लिए स्नेह न पनप सका। जब सौतेली मां उनकी मां की साड़ियां और जेवर पहनती तो भीम को और भी बुरा लगता।

उधर 'अछूत' माने जाने की कड़वी सच्चाई भी भीम के सामने आने लगी। वे यह पहले ही देख चुके थे कि दुकानदार उनकी माता को

सामान की पुड़ियां और पैकेट हाथ में देने के बजाय ऊपर से डाला करते थे ताकि वे उनसे छू न जाएं।

स्कूल में भीम को कक्षा के एक कोने में जमीन पर बिठाया जाता था। उन्हें बैठने के लिए हर रोज एक टाट का टुकड़ा अपने साथ स्कूल ले जाना पड़ता था। अध्यापक उनकी कॉपियों को हाथ नहीं लगाते थे। कुछ अध्यापक तो उनसे प्रश्न पूछने या पाठ पढ़ने को कहने से भी परहेज करते थे। स्कूल में प्यास लगने पर वे पानी तभी पी पाते थे जब कोई ऊपर से उनके मुंह में पानी डालने को राजी हो जाता।

गरमियों के मौसम में एक दिन भीम और आनंद अपने छोटे-से भतीजे के साथ रेलगाड़ी से गोरेगांव के लिए रवाना हुए। यहां उनके पिता खजांची के रूप में नौकरी करते थे। रामजी को यह संदेशा नहीं मिल पाया कि उनके बच्चे उनके पास आ रहे हैं, इसलिए स्टेशन पर बच्चों को लेने कोई नहीं पहुंचा। काफी देर इंतजार करने के बाद वे गोरेगांव जाने के लिए बैलगाड़ी में बैठ गए। कुछ देर चलते ही गाड़ीवान को पता चल गया कि साफ-सुथरे कपड़े पहने ये बच्चे 'दलित' हैं। गुस्से में आकर उसने बच्चों को गाड़ी से तत्काल उतार दिया। काफी फुसलाने और प्रलोभन देने के बाद दो गुने किराए के आश्वासन के बाद वह उन्हें इस शर्त पर ले जाने को राजी हुआ कि गाड़ी आनंद हांकेगा, बच्चे उसमें बैठेंगे तथा गाड़ीवान पैदल पीछे-पीछे चलेगा। इस प्रकार बच्चे रात को गोरेगांव पहुंच पाए। रास्ते में उन्हें पीने के लिए कहीं पानी नहीं मिला। लोग या तो उन्हें पानी देने से साफ मना कर देते या उन्हें सड़क के किनारे गड्ढा अथवा पोखरों से पानी पीने की सलाह देते। इस घटना से भीम को पता चला कि 'अछूत' कहे जाने का क्या मतलब है।

आगे एक और घटना घटी आघात पहुंचाने वाली इस घटना की अमिट छाप उनके मन पर पड़ी। एक बार प्यास पर काबू न रख पाने के कारण भीम चोरी-छिपे एक सार्वजनिक तालाब से पानी पीने लगे। किंतु सवर्ण हिंदुओं ने उन्हें पानी पीते देख लिया और उनकी खूब पिटाई की।

भीम को एक और अपमानजनक और शर्मनाक अनुभव होना शुरू हुआ। गांव के नाई को भैंस के बाल काटने में तो कोई एतराज नहीं था परंतु भीम के बाल छूने में उसे भ्रष्ट होने का डर था। अतः भीम की बहन सिर के बाल मूंड़ने में उनकी मदद करती थी। सिर पर बालों का केवल गोल गुच्छा और एक छोटी-सी चुटिया होती थी।

छोटी उम्र में ही भीम ने यह महसूस कर लिया था कि इस तरह अपमानजनक व्यवहार का शिकार होने वाले वे अकेले नहीं थे, बल्कि 'अछूत' कहलाने वाली जातियों के सभी लोग थे जो सदियों से यह अपमान सहन कर रहे थे।

शिक्षा

भीम ने अपना उपनाम 'अंबेडकर' सतारा में अध्ययन के दिनों में अपनाया। भीम के पूर्वज कोंकण क्षेत्र के अंबावाड़ी नामक स्थान के रहने वाले थे। मराठी भाषी हिंदुओं में प्रचलित प्रथा के अनुसार वास्तविक उपनाम सकपाल के साथ-साथ भीम का एक और उपनाम अंबावाडेकर भी था। भीम के अध्यापक अंबेडकर को लगा कि अम्बावाडेकर उपनाम कुछ लंबा और बेढंगा है। उन्होंने इसे सरल और छोटा बनाकर अंबेडकर के रूप में स्कूल के रिकार्ड में लिखा दिया। अध्यापक अंबेडकर तथा एक अन्य अध्यापक पेंडसे ही पूरे स्कूल में ऐसे थे जिनके मन में भीम के प्रति दया और स्नेह की भावना थी। यही कारण है कि भीमराव अंबेडकर ने जीवन भर उन्हें कृतज्ञतापूर्वक याद रखा।

पढ़ाई-लिखाई में भीम औसत दर्जे के थे। इसका मुख्य कारण यह था कि पढ़ाई में वे पूरा ध्यान नहीं देते थे। उन्हें बागवानी का बड़ा शौक था और उन्हें जब भी मौका मिलता वे पौध खरीद लाते। वे बड़ी लगन से उनकी देखभाल करते और उन्हें बढ़ते हुए देखकर खुश होते।

सतारा में पढ़ाई के दौरान हुई एक घटना ने अध्ययन के बारे में अंबेडकर का दृष्टिकोण बदल दिया। भीम को पता चला कि सतारा के जो लोग मुंबई गए थे, उन्हें मिलों में नौकरी मिल गई है और वे अच्छी

तरह कमा खा रहे हैं। भीम के मन में भी अच्छी नौकरी पाने और आत्मनिर्भर होने की इच्छा जागी। उन्होंने मुंबई भाग जाने का फैसला किया। परंतु मुंबई जाने के लिए किराया कहां से आता? उनकी बुआ मीराबाई पैसों की थैली अपनी कमर में बांधे रखती थीं। भीम ने वह थैली चुराकर घर से भाग जाने का विचार बनाया। रूपए चुराने की कोशिश में उन्होंने तीन रातें बेचैनी और तनाव में जागकर गुजारीं। चौथी रात वे कामयाब हो गए। परंतु उन्हें यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि थैली में बहुत कम पैसे थे।

भीम को अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्हें शार्मिंदगी महसूस हुई। उन्होंने भविष्य में कभी इस तरह का काम न करने ओर पढ़ाई में मेहनत करने का निश्चय किया।

चौथी कक्षा में नई भाषा सीखनी पड़ती थी। भीम संस्कृत पढ़ना चाहते थे। परंतु संस्कृत के अध्यापक ने कहा कि वे किसी 'दलित' को संस्कृत नहीं पढ़ा सकते। भीम को मन मसोसकर संस्कृत के बजाय फारसी पढ़नी पड़ी।

सतारा में रामजी की नौकरी की अवधि पूरी हो जाने पर उनका परिवार मुंबई चला गया। रामजी स्कूल में भीम की पढ़ाई के बारे में काफी चिंतित रहते थे। वे उनकी सामान्य प्रगति से संतुष्ट नहीं थे। भीम का कहना था, "मैं नियमित रूप से सारी परीक्षाएं उत्तीर्ण कर रहा हूं फिर पिताजी को मेरे पीछे पड़ने की क्या जरूरत है?" फिर भी चाहे किसी और रूप में ही सही, रामजी की दृढ़ता के अच्छे परिणाम सामने आने लगे।

भीम की पढ़ने में रुचि बढ़ गई। वे पाठ्य-पुस्तकों के अलावा सामान्य पुस्तकें भी पढ़ने लगे। उन्हें एक तरह से किताबों से प्यार हो गया। परंतु 'दलित' होने के कारण सहज रूप में पुस्तकें प्राप्त करना उनके लिए असंभव था। एकमात्र उपाय था किताबें खरीदना। भीम को अपनी पढ़ाई से अलग दूसरी पुस्तकें पढ़ते देखकर रामजी को अच्छा नहीं लगता था। परंतु जब भी भीम पुस्तकें खरीदने के लिए पैसे मांगते वे 'मना' नहीं करते। यदि उनके पास पैसे नहीं होते थे तो वे

अपनी किसी बेटी के पास जाकर कोई गहना मांग लाते और उसे गिरवी रखकर भी उनकी जरूरत की पुस्तकें खरीद देते थे।

मुंबई में वे परेल में डबाक चाल के एक छोटे से कमरे में रहते थे। कमरा घरेलू सामान से भरा रहता था। एक कोने में टांड़ के ऊपर ईंधन रखा रहता था, दूसरे कोने में चूल्हा था। खाना-सोना सब उसी कमरे में होता था। रात को उसी कमरे में एक बकरी को भी रखा जाता था।

रामजी ने आखिर एक उपाय ढूंढ़ निकाला ताकि भीम कमरे में बिना किसी रूकावट के अपनी पढ़ाई कर सके। सोते समय आधी रात तक बकरी भीम के पांव के समीप रहती और रामजी कमरे से बाहर जागते रहते। उसके बाद वे भीम को जगा देते। तब भीम कुछ घंटे पढ़ते और रामजी आराम करते।

एलफिंटन हाई स्कूल का माहौल जहां भीम दाखिल हुए उनकी पढ़ाई के अनुकूल नहीं था। हालांकि वह सरकारी स्कूल था परंतु जब भी भीम को ब्लैक बोर्ड पर सवाल हल करने के लिए बुलाया जाता था तो बच्चे शोर गुल मचाने लगते थे क्योंकि ब्लैक बोर्ड के पीछे उन बच्चों के खाने के डिब्बे रखे रहते थे और भीम के ब्लैक बोर्ड छूने से उन्हें खाना भ्रष्ट होने का डर था। एक अध्यापक भी भीम का अक्सर मजाक उड़ाते हुए कहा करता था कि एक महार स्कूल में पढ़ कर क्या करेगा।

भीम ये सभी अपमान चुपचाप सहते रहे। उन्होंने अपने भीतर उमड़ते क्रोध को दबाए रखा। उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी और सन् 1907 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

किसी अछूत बालक का इतनी शिक्षा लेना अपने आप में बहुत बड़ी और अनोखी घटना थी। अतः महार जाति के लोगों ने एक सभा बुलाकर भीमराव का अभिनंदन किया।

उसके बाद रामजी ने 17 साल के भीमराव का नौ वर्ष की कन्या रमाबाई से विवाह कर दिया। यह शादी मुंबई की बायकुला नामक जगह में बाजार के एक खुले शेड में हुई।

आगे पढ़ने के लिए भीमराव एलफिंस्टन कॉलेज में भर्ती हो गए। यहां भी महार होने के कारण भीम को कष्ट और अपमान झेलना पड़ा। अपने आस-पास 'दलितों' के साथ इसी तरह का व्यवहार होते देखकर उनका मन दुखी हो उठता था। कॉलेज की पढ़ाई के साथ-साथ भीमराव ने स्वाध्याय निरंतर जारी रखा। उन्होंने इंटर की पढ़ाई पूरी कर ली। रामजी के लिए भीमराव की आगे की पढ़ाई का खर्च उठाना मुश्किल हो गया। सौभाग्यवश बड़ौदा के महाराज सयाजी राव ने भीमराव को छात्रवृत्ति दी जिससे उन्होंने सन् 1912 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

2 फरवरी, 1913 को रामजी का निधन हो गया। भीमराव को इतना आगे तक ले जाने वाले पिता अब नहीं रहे। परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेवारी भीमराव के कंधों पर आ गई।

एक बार फिर बड़ौदा के महाराज सयाजीराव ने भीमराव को सहारा दिया। सयाजीराव ने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्हें अमेरिका भेजा। भीमराव की छात्रवृत्ति इस शर्त पर हुई कि इसके बदले भीमराव 10 वर्ष तक बड़ौदा रियासत में नौकरी करेंगे।

भीमराव जुलाई, 1913 में न्यूयॉर्क पहुंचे। वहां उन्होंने कड़ी मेहनत की और डिग्री की पढ़ाई के साथ-साथ अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं सामाजिक-विज्ञान, कानून, नैतिक-विज्ञान, मानव-शास्त्र जैसे विविध विषयों का अध्ययन करने की ठान ली। उन्होंने 'प्राचीन भारतीय वाणिज्य' विषय पर शोध-पत्र लिखा और सन् 1915 में एम.ए. की डिग्री हासिल की। साथ ही साथ उन्होंने एक और शोध-प्रबंध लिखा जिसका शीर्षक था, 'भारत के लिए राष्ट्रीय लाभांशः ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन' जिसे सन् 1916 में कोलंबिया विश्वविद्यालय ने स्वीकार कर लिया। आठ वर्ष बाद जब शोध प्रबंध प्रकाशित हुआ तो विश्वविद्यालय ने उसके आधार पर भीमराव को डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि प्रदान करने का फैसला किया।

अमेरिका में भीमराव को पहली बार अपमानित न होने तथा 'अछूत' न समझे जाने का सुखद अनुभव हुआ। उन्हें वहीं महसूस हुआ कि दूसरों के समान समाज का सदस्य बनकर जीने का क्या अर्थ है। भीमराव को लगा कि महारों को अस्पृश्यता के कलंक से मुक्त होने के लिए शिक्षित होना होगा।

भीमराव अमेरिका से अर्थशास्त्र और राजनीति-शास्त्र के अध्ययन के लिए लंदन चले गए। परंतु अध्ययन पूरा होने से पहले ही बड़ौदा रियासत ने उनकी छात्रवृत्ति समाप्त कर दी। भीमराव को विवश होकर भारत लौटना पड़ा। परंतु उन्होंने संकल्प किया कि वे एक बार फिर वहां जाएंगे और अपनी पढ़ाई पूरी करेंगे।

अपने गहन अध्ययन के दौरान भी भीमराव ने पुस्तकें खरीदने और पढ़ने का सिलसिला बंद नहीं किया। बहुत थोड़ी छात्रवृत्ति होने के बावजूद उन्होंने मितव्ययी बने रहकर लगभग 2,000 पुस्तकें खरीद ली।

भीमराव भारत लौट आए और समझौते के मुताबिक नौकरी के लिए बड़ौदा गए। परंतु उच्च शिक्षा प्राप्त होने और महाराज के मिलिटरी सेक्रेटरी के पद पर आसीन होने पर भी जाति के एक 'दलित' महार की भला किसे परवाह थी।

भीमराव के अधीनस्थ कर्मचारी उनसे कुछ दूर खड़े होकर फाइलें और कागजात उन्हें फेंक कर दिया करते थे। पानी मांगने पर उन्हें कोई पानी देने को तैयार नहीं था। और तो और, उन्हें किसी ने रहने के लिए किराए पर मकान तक नहीं दिया। तंग आकर उन्होंने अपनी जाति बताए बगैर पारसी होस्टल में शरण ली। जब होस्टल वालों को मालूम हुआ कि भीमराव महार हैं तो उन्हें अभद्र व्यवहार करके निकाल दिया गया। यहां तक कि महाराजा का दीवान भी इस मामले में कुछ नहीं कर सका। भीमराव का दिल टूट गया और वे एक पेड़ के नीचे बैठकर फफक-फफककर रोने लगे। नवंबर 1917 में भीमराव मुंबई लौट आए। इसके कुछ ही दिन बाद उनकी सौतेली मां की मृत्यु हो गई।

धन जमा करके अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी करने के लिए लंदन जाने के उद्देश्य से भीमराव साइडेनहेंम कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में अंशकालिक नौकरी करने लगे। कॉलेज में उनके काम को काफी पसंद किया गया। फिर भी सवर्ण हिंदुओं का अपमानजनक व्यवहार जारी रहा। भीमराव के मन में अस्पृश्यता को नष्ट करने की इच्छा होने लगी।

उस समय कोल्हापुर के महाराजा शाहू महाराज दलित वर्ग के कल्याण में गहरी रूचि ले रहे थे। उन्होंने 'दलित' छात्रों के लिए मुफ्त शिक्षा, आवास तथा भोजन की व्यवस्था की। उन्होंने 'दलितों' को नौकरी पर भी रखा तथा हर तरह से उन्हें प्रोत्साहन दिया। भीमराव ने शाहू महाराज की सहायता से 31 जनवरी, 1920 को *मूकनायक* नाम का अखबार शुरू किया। इसका उद्देश्य हिंदुओं में जात-पांत को समाप्त करना तथा अस्पृश्यता का निवारण करना था। शाहू महाराज ने 'दलितों' की अनेक सभाएं कीं और सम्मेलन भी आयोजित किए और भीमराव ने लोगों को संबोधित किया। 21 मार्च, 1920 को भीमराव ने कोल्हापुर में इस तरह के एक सम्मेलन की अध्यक्षता की। सम्मेलन में शाहू महाराज ने 'दलितों' से कहा, "तुम्हें अंबेडकर के रूप में अपना उद्धारक मिल गया है। मुझे विश्वास है कि वह तुम्हारी बेड़ियां काट देगा।"

भीमराव ने सचमुच उन बंधनों को जो 'दलितों' को जकड़े हुए थे। काटना शुरू कर दिया था। परंतु दलितों के बीच भी कई मतमतांतर थे जो एक-दूसरे को अपने से दूर रखते थे। एक बार वे बहुत समझा-बुझा कर महार जाति की 18 उपजातियों के नेताओं को एक साथ भोजन करने पर राजी करने में कामयाब हो गए। तब भी 'दलितों' के सभी समुदायों को एकजुट करना उनके लिए संभव नहीं हो पा रहा था। अंबेडकर को बहुत कठिन काम पूरा करना था।

परंतु उनके सामने सबसे पहला काम था पढ़ाई पूरी करने के लिए लंदन जाना। आखिर पैसों का प्रबंध होने पर सितम्बर 1920 में वे लंदन गए, अपनी पढ़ाई पूरी की और भारत लौट आए।

अब भीमराव अंबेडर बैरिस्टर बन चुके थे। उनके पास लंदन से विज्ञान में डॉक्टरेट और अमेरिका से डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि भी थी। इस तरह वे अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष के दौरान पेश आने वाली सब तरह की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम थे।

कार्य का शुभारंभ

महार होने के कारण डॉक्टर भीमराव अंबेडकर को वकालत करते हुए भी कई तरह की परेशानियां झेलनी पड़ीं। इन सब दिक्कतों का हिम्मत के साथ मुकाबला करते हुए उन्होंने अस्पृश्यता निवारण का कार्य पूरी गंभीरता से शुरू किया। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने जुलाई 1924 में *बहिष्कृत हितकारिणी सभा* की स्थापना की। इस संगठन का उद्देश्य था दलित जातियों के लोगों का उत्थान करना और उन्हें भारतीय समाज में राजनीतिक व सामाजिक दृष्टि से बराबरी का स्थान दिलाना। दलित वर्गों के उत्थान एवं कल्याण के लिए पहले से भी कुछ संस्थाएं और संगठन काम कर रहे थे। उन संगठनों का मकसद दलितों का उत्थान था परंतु डॉ. अंबेडकर की *बहिष्कृत हितकारिणी सभा* का मकसद हिंदू धर्म से छुआछूत की प्रथा का सफाया करना था। दो हजार वर्षों से भी अधिक समय से चली आ रही किसी प्रथा को उखाड़ फेंकना सचमुच बहुत कठिन कार्य था।

बहिष्कृत हितकारिणी सभा ने शिक्षा को पहली प्राथमिकता देते हुए बच्चों व बड़ों के लिए निःशुल्क स्कूल शुरू किए। उसने कई वाचनालय और पुस्तकालय स्थापित किए। डॉ. अंबेडकर दलितों की शिकायतें अदालत में ले गए और उन्होंने उन्हें न्याय दिलाया। जल्दी ही वे गरीबों और दलितों के पिता तुल्य हो गए। लोग उन्हें 'बाबा' और ज्यादा सम्मान देते हुए 'बाबासाहब' कहने लगे। डॉ. भीमराव अंबेडकर, डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के रूप में विख्यात हो गए।

सन् 1929 में सरकार ने डॉ. अंबेडकर को दलित हितों का प्रतिनिधित्व करने हेतु मुंबई लेजिस्लेटिव कांउसिल के लिए मनोनीत किया।

इससे पहले सन् 1923 में सामाजिक कार्यकर्ता रावबहादुर सीताराम बोले के प्रयासों से मुंबई के लेजिस्लेटिव काउंसिल ने सभी धर्मों, जातियों और वर्गों के लिए सार्वजनिक स्थान खुले रखने का प्रस्ताव पारित किया था। तथापि यह प्रस्ताव लागू नहीं हुआ था। 'दलित' इतने विनम्र थे कि उन्होंने सार्वजनिक स्थानों का इस्तेमाल करने हेतु कभी दृढ़, रुख नहीं अपनाया। उदाहरण के लिए कुलाबा जिले के, महाड़ में मीठे पानी के तालाब 'चवदार ताले' से वे तब दूर ही रहे।

डॉ. अंबेडकर ने कुछ करने का निश्चय किया। 19-20 मार्च 1927 को महाड़ में दलितों का सम्मेलन बुलाया गया। उसमें करीब 10 हजार प्रतिनिधियों, कार्यकर्ता और नेता शामिल हुए। बाबासाहब ने अत्यंत मार्मिक भाषण दिया। फौज में 'दलितों' की भरती पर ब्रिटिश सरकार द्वारा पाबंदी लगा दिए जाने की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा, "सेना से हमें सेना अधिकारी के रूप में अपना जीवन-स्तर बेहतर बनाने तथा अपनी योग्यता, प्रतिभा, साहस और कुशलता का परिचय देने के अच्छे अवसर मिलते थे। 'दलित' लोग मिलिटरी स्कूलों के हैडमास्टर भी बन सकते थे। सैनिक शिविरों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा बहुत ही कारगर और लाभकारी थी। 'दलितों' के लिए सेना के दरवाजे बंद करके ब्रिटिश सरकार ने हमारे साथ धोखा और विश्वासघात किया है।"

सम्मेलन में उन्होंने साफ-साफ कहा, "जब तक हम अपना तीन तरह से शुद्धिकरण नहीं करते तब तक स्थायी प्रगति नहीं हो सकती। हमें अपना आचरण सुधारना होगा, अपने बोलचाल का तरीका बदलना होगा और विचारों में दृढ़ता लानी होगी। अतः मैं आपका आह्वान करता हूं कि इसी क्षण से मृत जानवरों का सड़ा-गला मांस खाना बंद करो। समय आ गया है कि हम अपने मन से ऊंच-नीच का विचार निकाल दें। दृढ़ संकल्प करो कि दूसरों की फेंकी हुई जूठन कभी नहीं खाओगे। हम आत्मोत्थान तभी कर पाएंगे जब हम अपनी सहायता खुद करेंगे और आत्मसम्मान तथा आत्मज्ञान फिर से प्राप्त करेंगे।"

सम्मेलन में चवदार ताले के पानी पर अपना अधिकार जताने का

फैसला किया गया। अगले दिन बाबा साहब अंबेडकर के नेतृत्व में प्रतिनिधियों ने तालाब पर जाकर पानी पिया। इस पर क्रोधित सवर्ण हिंदुओं ने उन पर हमला कर दिया। उन्होंने दलितों से मारपीट की, सम्मेलन का पंडाल गिरा दिया, पका हुआ खाना फेंक दिया और सारे बरतन तोड़ दिए। बाबा साहब ने अपने लोगों को शांत बने रहने और बदले में कुछ न करने की हिदायत दी।

बाद में सवर्ण हिंदुओं ने दूषित सरोवर को 'पवित्र' करने के लिए पूजा-पाठ किया। बाबा साहब ने इसे अन्य जातियों का अपमान माना। उन्होंने घोषणा की कि वे सत्याग्रह करेंगे तथा सरोवर के पानी पर अपने लोगों का अधिकार कायम करके रहेंगे।

तदनुसार 25 दिसंबर, 1927 को विभिन्न स्थानों से हजारों 'दलित' सत्याग्रह के लिए पहुंचे। अनेक वक्ताओं ने भाषण दिए। लोगों की भावनाएं भड़क उठीं तथा लोग सत्याग्रह की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। परंतु सत्याग्रह टाल दिया गया, क्योंकि मामला अदालत में चला गया था। परंतु सम्मेलन के अंत में जाति-प्रथा को जन्म देने वाली सदियों पुरानी संहिता मनुस्मृति की एक प्रति जलाई गई। बाबासाहब ने गर्जना की कि इसके स्थान पर ऐसी नई *स्मृति* बननी चाहिए जिसमें सामाजिक दृष्टि से अन्यायपूर्ण नियम न हों। *मनुस्मृति* को जलाए जाने की घटना से सारा देश स्तब्ध रह गया। बाबासाहब एक प्रभावशाली शक्ति बन चुके थे।

बाबासाहब ने दलितों को सरोवर अथवा कुओं से पानी लेने और मंदिर में प्रवेश का अधिकार दिलाने का संघर्ष इसलिए किया क्योंकि यह इस बात का प्रतीक होगा कि दलित जाति के लोगों को सवर्ण हिंदुओं ने अंगीकार कर लिया है।

धारा के विरूद्ध

लेजिस्लेटिव कांउसिल में डॉ. अंबेडकर ने शिक्षा, मद्यनिषेध, कर व्यवस्था, महिला एवं बाल-कल्याण जैसे विषयों पर कड़ा रूख अपनाया।

परंतु सबसे अधिक चिंता उन्हें दलित वर्गों के उत्थान की थी।

सन् 1928 में उन्होंने महारों के रहन-सहन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए एक विधेयक पेश किया। उस समय के कानून के अनुसार सरकारी नौकरी कर रहे किसी महार को पूरे दिन और पूरी रात गुलामी करनी पड़ती थी। उसकी अनुपस्थिति में उसके परिवार के किसी सदस्य को उसका काम करना पड़ता था। इस कठिन सेवा के बदले महार को थोड़ी-सी जमीन, जिसे वतन कहा जाता था, थोड़ी सी मक्का और मामूली सा वेतन मिलता था।

इस विधेयक के माध्यम से बाबासाहब ने इस दासता को समाप्त करने का प्रयास किया। परंतु अन्य सदस्यों का सहयोग न मिलने के कारण यह विधेयक पारित नहीं हो सका। विधेयक पर बहस के दौरान बाबासाहब को कड़े विरोध का सामना करना पड़ा।

इस विषय पर ही नहीं, कई और मसलों पर भी बाबासाहब अकेले पड़ जाते थे, क्योंकि उनकी सोच आम लोगों की सोच के विपरीत थी। उदाहरण के लिए जब सन् 1929 में देश को आजादी देने के सवाल पर विचार के लिए ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की तो इंडियन नेशनल कांग्रेस ने उसका बहिष्कार करने का फैसला किया। कमीशन के भारत आगमन पर उसे काले झंडे दिखाए गए और साइमन वापस जाओ" के नारे लगाए गए। इस बीच अनेक राजनीतिक दलों ने मिलकर मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति गठित कर ली थी। इस समिति ने स्वतंत्र भारत के लिए संविधान तैयार किया। संविधान निर्माण की दिशा में यह पहला भारतीय प्रयास था। दुखद बात यह थी कि इस संविधान में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिए कोई प्रावधान नहीं था।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को ऐसा संविधान स्वीकार नहीं था। उन्होंने साइमन कमीशन से सहयोग करने तथा दलितों के हितों की रक्षा का प्रयास करने का फैसला किया। इस फैसले के कारण उनकी घोर निंदा हुई और उन्हें अंगरेजों की कठपुतली कहा गया। यहां तक कि उन्हें 'देशद्रोही' कहा गया।

उस दौरान मुंबई में करीब एक लाख कपड़ा मजदूर हड़ताल पर थे और वह हड़ताल लगभग 6 महीने चली। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने देखा कि गरीब 'दलित' मजदूरों की हालत बदतर होती जा रही थी। कपड़ा मिलों के 'दलित' कामगारों को बेहतर वेतन वाले कामों से दूर रखा जाता था। हड़ताल के आयोजक कम्युनिस्ट उनकी दशा सुधारने के लिए कुछ नहीं कर रहे थे। हड़ताल पूरी तरह से राजनीतिक दिखाई देती थी। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने एक बार फिर सबसे अलग रूख अपनाने का फैसला किया। उन्होंने दलित मजदूरों को हड़ताल से अलग हो जाने की सलाह दी, क्योंकि इस हड़ताल के कामयाब हो जाने पर भी उन्हें कुछ हासिल नहीं होने वाला था। दलित मजदूर उनकी सलाह मानकर हड़तालियों से अलग हो गए और काम पर लौट गए।

इसके साथ-साथ डॉ. बाबासाहब अंबेडकर अन्य मोर्चों पर भी लड़ाई जारी रखे हुए थे। उन्हें दलित वर्गों की शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक दशा का अध्ययन करने तथा उनके उत्थान के उपाय सुझाने के लिए मुंबई सरकार द्वारा गठित स्टार्ट समिति का सदस्य बनाया गया।

इस स्टार्ट समिति के साथ किए विभिन्न जिलों के दौरों में भी डॉ. अंबेडकर को कई बार अपमान झेलना पड़ा। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि हालांकि दलित वर्गों के लोग हिंदुओं के विधि-विधानों, त्यौहारों और धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करते हैं, परंतु उन्हें अलग-थलग रहने को मजबूर किया गया है। समिति का विचार था कि साझे स्कूलों से दलितों की शिक्षा में मदद मिलेगी। समिति ने उनके लिए छात्रवृत्तियां बढ़ाने, अधिक हॉस्टल खोलने तथा उद्योगों, मिलों व रेलवे कारखानों में तकनीकी प्रशिक्षण देने की सिफारिश की। समिति ने यह भी सिफारिश की कि दलित वर्गों के व्यक्तियों को पुलिस तथा फौज में भरती किया जाए। उसने इन सिफारिशों के अमल पर निगरानी के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त करने की भी सिफारिश की।

मार्च 1930 में जब गांधीजी सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरूआत

के लिए डांडी मार्च का नेतृत्व कर रहे थे, उस समय डॉ. अंबेडकर नासिक के प्रसिद्‌ध राम मंदिर में दलितों को प्रवेश दिलाने के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व कर रहे थे।

गोलमेज कांफ्रेंस

साइमन कमीशन की सिफारिशों के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने सभी रियासतों के शासकों तथा विभिन्न दलों के नेताओं को बातचीत के लिए बुलाया। नवंबर 1930 से जनवरी 1931 तक हुई इस गोलमेज कांफ्रेंस के लिए डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को 'दलितों' के प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित किया गया।

कॉफ्रेंस में डॉ. अंबेडकर ने कहा कि मैं ब्रिटिश भारत की कुल जनसंख्या के पांचवे हिस्से के लोगों का दृष्टिकोण रख रहा हूं जिनकी हालत गुलामों से भी बदतर बना दी गई है। उन्होंने कहा, "ब्रिटिश लोगों के आने से पहले अस्पृश्यता के कारण हम घृणित अवस्था में थे। क्या ब्रिटिश सरकार ने इस स्थिति को सुधारने के लिए कुछ किया है? ब्रिटिश सरकार से पहले हम गांव के कुएं से पानी नहीं ले सकते थे। क्या ब्रिटिश सरकार ने हमें कुएं से पानी लेने का अधिकार दिलाया है? अंगरेजों के आने से पहले हम मंदिरों में नहीं जा सकते थे। क्या अब हम मंदिरों में प्रवेश कर सकते हैं? पहले हमें पुलिस में भरती नहीं किया जाता थे। क्या अब सरकार हमें पुलिस में भरती करती है? अंगरेजों के आने से पहले सेना में हमारे प्रवेश की मनाही थी। क्या अब हमें फौज में भरती हो संकते हैं? इनमें से किसी भी प्रश्न का उत्तर हां में नहीं दिया जा सकता। सभी विकार खुले घाव की तरह मौजूद हैं और अंगरेजी शासन के 150 वर्ष बीत जाने पर भी उन्हें दूर नहीं किया गया है।"

डॉ. अंबेडकर द्वारा 'दलितों' की दुर्दशा का स्पष्ट चित्र खींचे जाने के बाद पहली बार दुनिया को मालूम हुआ कि भारत में इन वर्गों के लोग कैसी जिंदगी बसर कर रहे हैं। गोलमेज कांफ्रेंस में डॉ. अंबेडकर ने

भारत के लिए औपनिवेशिक दर्जे का जोरदार समर्थन किया और संविधान निर्माताओं को संविधान बनाते समय यह बात ध्यान में रखने को कहा कि जाति-प्रथा समाज में समानता और भाईचारा कायम करने में बहुत बड़ी बाधा है।

सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि डॉ. अंबेडकर ने बड़ी मेहनत तथा राजनीतिक सूझबूझ के साथ दलित वर्गों के मौलिक अधिकारों का घोषणा-पत्र भी तैयार किया। उन्होंने उस योजना को भारत के भावी संविधान में शामिल करने का सुझाव दिया। समूचे भारत में दलित जातियों के संगठनों की अनेक बैठकों में इस दस्तावेज पर विचार-विमर्श हुआ तथा इसके समर्थन में प्रस्ताव पारित किए गए।

डॉ. बाबासाहब को गोल मेज कांफ्रेंस की दूसरी बैठक के लिए भी आमंत्रित किया गया। इस बार उन्हें संघ निर्माण समिति का सदस्य बनाया गया, जिसे भारत के भावी संविधान का मसौदा तैयार करने का काम सौंपा गया। दूसरी गोल मेज कांफ्रेंस की विशेषता यह थी कि इसमें महात्मा गांधी भी शामिल हुए।

पूना समझौता

सम्मेलन में महात्मा गांधी ने कहा कि इंडियन नेशनल कांग्रेस को 'दलितों' के हितों की किसी भी अन्य संस्था या व्यक्तियों के हितों के समान चिंता है। 'दलितों' को हिंदू समाज का अभिन्न अंग मानते हैं और नहीं चाहते कि वे किसी भी रूप में समाज से अलग रहें। इसलिए उन्होंने घोषणा की कि वे दलित वर्गों को विशेष प्रतिनिधित्व देने का विरोध करेंगे।

यह दृष्टिकोण डॉ. अंबेडकर के विचार से एकदम अलग था, क्योंकि वे दलित वर्गों को अलग मताधिकार दिलाने पर दृढ़ थे। इसके अलावा उनका मानना था कि कांग्रेस अस्पृश्यता की समस्या के प्रति गंभीर और ईमानदार नहीं थी। उनका तर्क यह था कि यदि ऐसा होता तो कांग्रेस ने पार्टी की सदस्यता के लिए अस्पृश्यता छोड़ने और दलितों के साथ

बैठकर खाना खाने की भी उसी तरह शर्त रखी होती जिस तरह खादी पहनने की रखी गई है। उन्हें आशंका थी कि स्वतंत्र भारत में भी सवर्ण हिंदू दलितों के साथ दुर्व्यवहार करते रहेंगे।

भारत लौटने पर जिस समय दलित वर्गों के लिए अलग मताधिकार की घोषणा की गई, उस समय महात्मा गांधी पूना के निकट यरवदा जेल में बंद थे। गांधीजी को इससे इतनी ठेस लगी कि उन्होंने इस फैसले के खिलाफ आमरण अनशन कर दिया। इससे सारे देश में हलचल मच गई।

दिन बीतते गए और समूचा राष्ट्र महात्मा गांधी के स्वास्थ्य को लेकर चिंतित हो उठा। परंतु डॉ. बाबासाहब अंबेडकर अपने दृष्टिकोण पर अडिग थे, भले ही उन्हें महात्मा गांधी के सीधे विरोध पड़ रहा था तथा पूरे देश की नाराजगी और विद्वेष झेलना पड़ें। उन्होंने ऐलान किया कि वे दलितों के अधिकारों को किसी भी तरह से कम होने देने के लिए तैयार नहीं हैं।

अनेक लोग, नेता तथा मित्र डॉ. बाबासाहब अंबेडकर से मिलने आने लगे। वे उनसे अपील करने लगे तथा उन पर दवाब डालने लगे। उनके खिलाफ जोरदार आंदोलन चलाए गए। परंतु वे टस से मस नहीं हुए। अंततः यरवदा जेल में डॉ. अंबेडकर तथा महात्मा गांधी के बीच बातचीत के लिए योजना बनाई गई। उसके 2 दिन बाद 24 सितंबर, 1932 को दोनों नेताओं ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जो पूना समझौता कहलाता है। इसके अनुसार दलितों के लिए अलग मताधिकार का प्रावधान समाप्त हो गया। इसके बजाय दलितों को कई रियायतें दी गईं। प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेंबलियों में 148 सीटें और सेंट्रल कांउसिंल ऑफ स्टेट्स में 18 प्रतिशत सीटें उनके लिए आरक्षित की गईं। इस तरह महात्मा गांधी के जीवन की रक्षा हुई और अस्पृश्यता की विकट समस्या के बारे में देश की आंखें खुली। इसके बाद बहुत से सार्वजनिक कुएं और मंदिर दलितों के लिए खोल दिए गए। नवंबर, 1932 में डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने गोल मेज कांफ्रेंस के तीसरे सत्र में भाग लिया।

दुख की घड़ी

लगातार काम करने से डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की सेहत खराब हो चली। उनके लिए अधिक समय तक विश्राम आवश्यक हो गया। इसके लिए वे मार्च, 1934 में बोर्डी और महाबलेश्वर गए। उस समय तक बाबासाहब का एक प्रिय सपना पूरा हो चुका था। उनके द्वारा मनोयोग से तैयार किए गए डिजाइन वाला उनका मकान बनकर तैयार था। निचली मंजिल पर डॉ. अंबेडकर अपनी विनम्र पत्नी रमाबाई के साथ रहने लगे। ऊपर की मंजिल पर सफाई और करीने से हजारों पुस्तकें रखी गईं।

कुछ दिन बीमार रहने के बाद 27 मई, 1935 को रमाबाई का देहांत हो गया। जीवन के अनेक झंझावातों को झेल चुके बहादुर तथा साहसी डॉ. अंबेडकर, पत्नी के विछोह तथा दुख को सहन नहीं कर पाए। वे अंदर से टूट गए।

रमाबाई की मृत्यु से पहले डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने मुंबई सरकार की ओर से लॉ कॉलेज के प्रधानाचार्य बनने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया था। रमाबाई की मृत्यु के बाद जून, 1935 में उन्होंने यह नौकरी शुरू की। अब वे सरकारी कर्मचारी बन गए थे और लोगों का विचार था कि सरकारी नियमों के अनुरूप उन्हें राजनीति छोड़नी पड़ेगी।

राजनीति के बाहर एक 'दलित' का जीवन चाहे वह डॉ. बाबासाहब अंबेडकर जैसा शिक्षित और विद्वान ही क्यों न हो, कटु, अपमानजनक, यातनाओं से भरा बना रहा। उनके लंबे संघर्ष और कष्ट साध्य प्रयासों के परिणाम उत्साहजनक नहीं थे। कभी-कभी तो वे ऐसी स्थिति में हतोत्साहित हो जाते थे।

13 अक्टूबर, 1935 को येवला, नासिक में एक सभा में डॉ. अंबेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए एक दशक पहले शुरू किए गए संघर्ष के दौरान अछूतो की दशा में हुए सुधारों की समीक्षा की। अपने मार्मिक भाषण में डॉ. अंबेडकर ने हिंदू समाज के अंग के रूप में 'दलितों' की

आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक क्षेत्रों में उनकी स्थिति का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि मुझे यह दुखद अनुभूति हुई है कि जो समय व धन खर्च किया गया है और उन्होंने जो प्रयास किए हैं, उनका कोई नतीजा नहीं निकला। अब समय आ गया है कि हमेशा के लिए मामला सुलझाने के लिए कोई अंतिम फैसला किया जाए। इसके बाद उन्होंने दलित वर्गों को प्रेरित किया कि वे हिंदू धर्म से सारे नाते तोड़ लें और शांति तथा आत्मसम्मान के लिए किसी दूसरे ऐसे धर्म की शरण लें जहां उन्हें समानता का दर्जा, सम्मान और आगे बढ़ने के अवसर मिलें।

धर्म-परिवर्तन की डॉ. अंबेडकर की घोषणा से सारे देश में तहलका मच गया। मुसलमानों, सिक्खों तथा बौद्धों ने उन्हें अपने-अपने धर्म में आने का निमंत्रण दिया।

चुनाव

जैसे-जैसे 1936 का वर्ष समाप्त होने का आया, देश के लोगों के विभिन्न समूहों में हलचल और उत्साह बढ़ने लगा। ब्रिटिश सरकार ने आगामी वर्ष में चुनाव कराने की घोषणा की थी ताकि प्रांतों का शासन निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जा सके। उस समय मौजूद इंडियन नेशनल कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा हिंदू महासभा जैसे राजनीतिक दल अगले चुनावों की तैयारी में लग गए। डॉ. अंबेडकर ने भी अपनी तैयारियां शुरू कर दीं।

अगस्त 1936 में उन्होंने नया राजनीतिक दल बनाया और उसे इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी नाम दिया। मुंबई प्रांत तक सीमित इस नए दल ने भूमिहीन लोगों, निर्धन काश्तकारों, खेतीहर मजदूरों तथा मिल मजदूरों की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करने तथा शिकायतों को दूर करने के आधार पर अपना कार्यक्रम तैयार किया।

चुनाव 17 फरवरी, 1937 को हुए। डॉ. अंबेडकर तथा उनके कई साथी भारी बहुमत से विजयी हुए। इस जीत के तुरंत बाद उन्हें एक

और सफलता मिली। मुंबई उच्च न्यायालय ने महाड़ के चवदार ताले से पानी लेने संबंधी लंबे समय से चल रहे मुकदमे का फैसला दलितों के हक में किया।

बंबई प्रांतीय लेजिस्लेटिव असेंबली में डॉ. अंबेडकर ने सन् 1937 में कोंकण क्षेत्र में भूमि बटाई की खेती प्रथा समाप्त करने के लिए विधेयक पेश किया। विधेयक में यह प्रावधान था कि कृषि का लाभ उन गरीबों को दिया जाए जो छोटी-छोटी जोतों के मालिक हैं और उन्हें जोतते हैं न कि धनी 'खेत' को जो इन सबके ऊपर मुखिया के रूप में काम करता हैं। उन्होंने कृषि बटाईदारों की दासता की प्रथा तथा महार 'वतन' प्रथा समाप्त करने के लिए एक और विधेयक रखा इस प्रथा के खिलाफ वे एक दशक से भी अधिक समय से आंदोलन कर रहे थे।

एक कृषि विधेयक की एक धारा में दलित वर्गों के लिए 'हरिजन' शब्द इस्तेमाल किया गया। इस नए शब्द के प्रयोग का जोरदार विरोध करते हुए डॉ. अंबेडकर ने पूछा कि यदि दलित लोग भगवान के लोग हैं तो क्या सवर्ण राक्षस के हैं? उन्होंने असेंबली में दृढ़ता से कहा कि यदि सभी को हरिजन पुकारा जाए तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी। इस मामले में मतदान हुआ। इंडियन नेशनल कांग्रेस बहुमत में होने के कारण नया शब्द लागू कराने में सफल हो गई। डॉ. बाबासाहब ने, जिनकी पार्टी ने असेंबली में दलित वर्गों के लिए सुरक्षित 15 में से 13 सीटें जीतीं थी, दुखी होकर कहा कि उन्हें किस नाम से पुकारा जाए, इस बारे में भी उनकी बात नहीं सुनी जाती।

सन् 1939 में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओं से परामर्श किए बिना ही घोषणा कर दी कि भारत लड़ाई में ब्रिटेन का साथ देगा। उस मनमानी के विरोध में कांग्रेस सरकारों ने सभी प्रांतों में इस्तीफा दे दिया।

युद्ध के दौरान ही डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की पुस्तक *थॉट्स ऑन पाकिस्तान* प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने पृथक मुस्लिम राष्ट्र बनाने के मसले पर कुशलतापूर्वक तर्क दिए। इस पर काफी चर्चा हुई और उनकी आलोचना की गई।

उस समय डॉ. बाबासाहब अंबेडकर लगातार सभाएं करके दलितों को ब्रिटिश सेना में भरती होने के लिए प्रेरित भी कर रहे थे। उन्होंने मुंबई के गवर्नर से मुलाकात करके सेना में महारों की भरती पर लगा प्रतिबंध समाप्त करने और नई महार बटालियन बनाने का भी अनुरोध किया। उनका अनुरोध मान लिया गया और शीघ्र ही एक महार बटालियन बन गई।

ऐसे समय में जब स्वतंत्रता आंदोलन जोर पकड़ रहा था, दलित वर्गों को ब्रिटिश सेना में भरती होने के लिए प्रोत्साहित करने का यह प्रयास बहुत से लोगों को नागवार गुजरा और इसे विदेशी शासकों की मदद माना गया। डॉ. अंबेडकर की कड़ी भर्त्सना की गई तथा उनका उपहास भी किया गया। परंतु जिसके मन में दलितों की भलाई सबसे ऊपर थी। उसे इन आलोचनाओं की कोई परवाह नहीं थी। वे धारा के विरूद्ध जाने के आदी थे।

देश के बहुसंख्यक लोगों के इस 'तिरस्कार' की क्षतिपूर्ति के रूप में भारत के वाइसराय ने डॉ. अंबेडकर को जुलाई, 1941 में गठित रक्षा सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त किया। अगले वर्ष जून सन् 1942 में वाइसराय ने डॉ. अंबेडकर को कार्यकारी परिषद का सदस्य बना दिया। भारत के इतिहास में इससे पहले कभी भी देश के प्रशासन के इतने ऊंचे पद पर कोई 'अछूत' नियुक्त नहीं हुआ था।

गांधी जी ने 9 अगस्त, 1942 को भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया। सारा देश करो या मरो के उत्साहपूर्ण नारे से अनुप्राणित था। घटनाएं बड़ी तेजी से घट रही थीं। सन् 1945 के अंत में लार्ड वावेल ने आम चुनावों की घोषणा कर दी।

एक बार फिर राजनीतिक सरगर्मियां तेज हो गई क्योंकि सभी दल चुनाव अभियान में जुट गए। अपने संगठन शेडयूल्ड कास्ट फेडरेशन की ओर से बाबासाहब अंबेडकर भी तूफानी दौरे पर निकल पड़े। सभाओं को संबोधित करते हुए उन्होंने अपने लोगों से कहा कि दलितों की भलाई इसी में है कि उनके लिए आरक्षित सभी सीटे जीती जाएं। परंतु जब परिणाम घोषित हुए तो डॉ. अंबेडकर तथा उनके साथी बुरी

तरह हार गए। डॉ. अंबेडकर के लिए चुनाव हारना राजनीतिक पक्षाघात जैसा था।

स्वाधीनता

भारतीय जनता में स्वतंत्रता के लिए बढ़ती बेचैनी, आजाद हिंद फौज की गाथा से उभरी देशभक्ति की लहर और नौसेना व वायुसेना में हुए विद्रोह के कारण अंगरेजों को लगने लगा कि अब अधिक समय तक भारत को गुलाम बनाए रखना संभव नहीं होगा। सन् 1946 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लेमेंट एटली ने भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के अधिकार को सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया।

ब्रिटेन के तीन कैबिनेट मंत्रियों का प्रतिनिधिमंडल, जो बाद में केबिनेट मिशन के नाम से मशहूर हुआ, भारत में आया और उसने विभिन्न राजनीतिक दलों व नेताओं से बातचीत की। तब तक ब्रिटिश सरकार ने चुनावों में विजयी दलों के प्रतिनिधियों से भारत में नई सरकार बनाने का फैसला कर लिया था। वाइसराय की कार्यकारी परिषद भंग हो गई। सरकारी जिम्मेदारी से मुक्त होने के बाद बाबासाहब अंबेडकर को दलित वर्गों के लिए काम करने का और मौका मिला।

इन हालात में उन्हें अपना एक और संजोया हुआ सपना पूरा होता दिखाई दिया। उनकी हमेशा यह कामना रही थी कि वे आधुनिक सुविधाओं एवं उपकरणों तथा सुयोग्य अध्यापकों से युक्त एक शिक्षा संस्थान खोलें। इसके लिए सन् 1945 में उन्होंने पीपुल्स एजुकेशनल सोसायटी की स्थापना की। जून, 1946 में इस संस्था ने अपना प्रथम शिक्षा संस्थान, सिद्धार्थ कॉलेज खोला। 29 जून को कामचलाऊ सरकार की घोषणा की गई और कैबिनेट मिशन लंदन लौट गया।

यद्यपि कांग्रेस ने भी हरिजन उत्थान का काम अपने हाथ में लिया था, परन्तु डॉ. अंबेडकर को उसके कोई खास परिणाम आने की आशा नहीं थी। उनको डर था कि स्वतंत्र भारत में हरिजन पुनः गरीबी के

गर्त में धकेल दिए जाएंगे और समाज तथा सार्वजनिक स्थानों से बहिष्कृत कर दिए जाएंगे। यही सोचते हुए बाबासाहब ने अपने लोगों को साथ लेकर कांग्रेस के खिलाफ जोरदार आंदोलन छेड़ा। उन्होंने कांग्रेस से साफ तौर पर यह बताने को कहा कि स्वतंत्र भारत में दलित वर्गों की स्थिति सामाजिक दर्जा तथा उनके अधिकार क्या होंगे।

जैसा कि कैबिनेट मिशन ने तय किया था, संविधान सभा गठित करने के लिए सदस्य प्रांतीय असेंबलियों द्वारा चुने गए, जिसका काम संविधान का निर्माण करना था। तथापि बंगाल के अनुसूचित वर्ग के प्रतिनिधियों और मुस्लिम लीग के समर्थन से डॉ. अंबेडकर को भी संविधान सभा में स्थान मिला। अपने विशद ज्ञान और गहरी सूझबूझ तथा सुबोध एवं प्रभावशाली वक्तृत्व कला के बल पर अंबेडकर ने बहुत जल्दी सभी सदस्यों का दिल जीत लिया। इसके अलावा उन्होंने "राज्य और अल्पसंख्यक समुदाय" विषय पर बड़ी मेहनत से प्रारूप तैयार किया और संविधान सभा के सामने रखा। 29 अप्रैल, 1947 को संविधान सभा ने घोषणा की कि सब तरह की अस्पृश्यता समाप्त कर दी जाएगी।

15 जुलाई, 1947 को ब्रिटिश संसद ने भारत स्वाधीनता अधिनियम पास किया। भारत के पहले मंत्रिमंडल के गठन का समय आ गया था। उस समय सब दंग रह गए जब डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को कानूनमंत्री के रूप में केबिनेट में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया। उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया।

संविधान निर्माता

स्वाधीन भारत की संविधान सभा ने संविधान प्रारूप समिति बनाई, जिसका अध्यक्ष डॉ. बाबासाहब अंबेडकर को बनाया गया। जिस अंबेडकर ने दो दशक पूर्व *मनुस्मृति* जलाककर हिन्दुओं के लिए नई संहिता की मांग की थी, उसी अंबेडकर को हिंदू बहुसंख्या वाले स्वतंत्र

भारत के संविधान का प्रारूप तैयार करने का दायित्व सौंपा गया।

डॉ. अंबेडकर अपने मंत्रालय का कार्यभार संभालने के साथ-साथ इस अत्यंत प्राचीन, विशाल और विविधतापूर्ण राष्ट्र के संविधान निर्माण में भी निरंतर लगे रहे। संविधान प्रारूप समिति में यों तो सात सदस्य थे, किंतु विभिन्न कारणों से यह बृहत् कार्य भार अकेले डॉ. बाबासाहब अंबेडकर के कंधों पर आ पड़ा। छह महीने बाद, फरवरी, 1948 में उन्होंने अपना काम पूरा कर दिया। संविधान का प्रारूप देश की जनता के सामने रखा गया। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर की मेहनत रंग लाई।

परंतु बाबासाहब को इस कड़ी मेहनत की भी कीमत चुकानी पड़ी। अत्यधिक शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम का उनकी सेहत पर बहुत बुरा असर पड़ा। उन्हें स्नायु-पीड़ा के दौरे पड़ने लगे जो कई-कई घंटों तक और कभी-कभी तो पूरे दिन या दो-दो दिन तक रहते। डॉ. अंबेडकर इलाज के लिए मुंबई आए। उन्हें लगा कि पत्नी रमाबाई के बाद उनका ऐसा कोई साथी न रहा जो उन्हें स्नेह देते हुए उनकी देखभाल करता। ऐसे अंतरंग साथी के रूप में उन्हें उसी अस्पताल में जहां डॉ. अंबेडकर का इलाज चल रहा था, डॉ. शारदा कबीर मिल गईं। उन्होंने विवाह करने का निर्णय लिया। 57 वर्ष की आयु में डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने डॉ. शारदा कबीर से विवाह कर लिया।

फिर वे स्वस्थ होने लगे तथा नया घरेलू जीवन प्राप्त करने के बाद अपने काम पर लौट आए। अक्टूबर, 1948 में उनकी अंग्रेजी पुस्तक *दि अनटचेबल्स* प्रकाशित हुई।

भारतीय संविधान के प्रारूप पर 6 महीने तक सार्वजनिक विचार और बहस के बाद 4 नवम्बर को डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने उसे संविधान सभा में प्रस्तुत किया। इसमें 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। अपने भाषण में उन्होंने इसे अत्यंत जटिल दस्तावेज बताते हुए उसकी मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला। अनुच्छेदों को पूरी तरह तथा अच्छी तरह न समझ पाने के कारण प्रारूप की जो आलोचनाएं हुई, उनका उन्होंने युक्तियुक्त रूप से उत्तर भी दिया। संविधान

स्वीकार किए जाने से पहले उसके प्रत्येक अनुच्छेद की प्रत्येक धारा पर विस्तार से चर्चा हुई।

29 नवम्बर, 1948 को संविधान का अनुच्छेद 11 भारी समर्थन के साथ पारित हो गया। इस अनुच्छेद में अस्पृश्यता की समाप्ति की घोषणा की गई थी।

पूरा संविधान तीन बार पढ़ा गया और 395 अनुच्छेदों तथा 8 अनुसूचियों वाला संविधान 26 नवम्बर, 1949 को स्वीकार किया गया। भारतीय संविधान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता न्यायगत प्रभुसत्ता है। उस प्रभुसत्ता का निर्वहन संसद करती है।

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने परिश्रमपूर्वक संविधान का प्रारूप बनाने के साथ-साथ हिंदू कानून को संशोधित करने और उसे संहिताबद्ध करने का काम भी किया। उन्होंने अक्टूबर, 1948 में हिंदू कोड बिल संविधान सभा में प्रस्तुत किया। इससे बहुत बड़ा झमेला खड़ा हो गया।

हिंदू कानून

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने स्पष्ट किया कि हिंदू कोड बिल का उद्देश्य हिंदू कानून के कुछ पहलुओं को संहिताबद्ध और संशोधित करना है। सभी हिंदुओं के लिए एक ही तरह के कानून बनाना देश की एकता के लिए लाभदायक रहेगा। डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने इस बात पर जोर दिया कि नए गणतंत्रात्मक भारतीय संविधान में स्पष्ट निर्देश निहित हैं कि सरकार के द्वारा समग्र रुप से देश के लाभ के लिए एक समान नागरिक संहिता तैयार करने की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए।

परंतु लोगों में और यहां तक कि कांग्रेस पार्टी में इस विषय पर मतभेद थे। अतः हिंदू कोड बिल पर विचार सितंबर 1951 में होने वाले अगले सत्र तक स्थगित कर दिया गया। लगा कि डॉ. अंबेडकर के प्रयास व्यर्थ हो गए हैं।

इन सब घटनाओं के बीच डॉ. अंबेडकर नई दिल्ली में गौतम बुद्ध की जयंती के अवसर पर एक सम्मेलन को संबोधित करने के बाद से बौद्धों तथा बौद्ध धर्म के निकट आते गए। उन्होंने *बुद्ध तथा उनके धर्म का भविष्य* शीर्षक से एक लेख भी लिखा जिसमें बौद्ध धर्म की अच्छाइयों की प्रशंसा की गई। इसके बाद वे अपनी पत्नी डॉ. शारदा के साथ एक बौद्ध सम्मेलन में भाग लेने कोलंबो भी गए। वहां उन्होंने 'दलितों' को बौद्ध धर्म अपनाने की सलाह दी। भारत लौटकर सितंबर 1950 में मुंबई के एक बौद्ध मंदिर में अपने भाषण में डॉ. अंबेडकर ने कहा कि अपने कष्ट कम करने के लिए दलित वर्गों को बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेना चाहिए।

डॉ. अंबेडकर का स्वास्थ्य दिनों-दिन चिंताजनक होता जा रहा था। परंतु वे अपना इलाज शुरू कराने से पहले संविधान सभा में हिंदू कोड बिल पर विचार शुरू करवा देना चाहते थे। यह विधेयक कानून के जरिए हिंदू समाज के बुनियादी ढांचे को बदलने और उसे आधुनिक परिस्थितियों के अधिक अनुरूप बनाने का सुनहरा अवसर था। यह विचार मात्र ही उनके लिए अत्यंत रोमांचकारी और प्रेरक था कि एक दलित, एक महार होते हुए भी वे हिंदू समाज के पुनर्निर्माण में सहायक बन रहे थे। इस विधेयक को तैयार करने के लिए उन्होंने गहन अध्ययन और अथक परिश्रम किया था। इस काम में उन्होंने अपनी सेहत का ध्यान नहीं रखा। डाक्टरों ने उन्हें लिखने-पढ़ने से मना कर रखा था, किंतु वे काम में लगे रहे जिससे उनकी आंखों की रोशनी और कम हो गई। वे असेंबली में हिंदू कोड बिल पर विचार शुरू होने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते रहे।

परंतु कांग्रेस में अधिसंख्य सदस्य विधेयक के पारित होने के पक्ष में नहीं थे। अतः पहले तो निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सितंबर में विधेयक पर विचार शुरू नहीं किया गया, इसके बाद जब विधेयक पेश किया भी गया तो वह मूल विधेयक का विकृत रूप में आंशिक हिस्सा ही था। इस कटे-छटे विधेयक पर भी पूरी तरह से विचार और बहस नहीं कराई गई।

हताश हुए डॉ. बाबासाहब अंबेडकर यह सुनहरा अवसर हाथ से निकलना सहन नहीं कर पाए। उन्होंने कानून मंत्री का पद छोड़ दिया और मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया।

सम्मान

संविधान लागू होने के बाद सन् 1952 के आरंभ में देश में पहले आम चुनाव हुए। डॉ. अंबेडकर लेजिस्लेटिव असेंबली के लिए खड़े हुए लेकिन हार गए। परंतु मार्च 1952 में वे राज्यसभा के लिए चुन लिए गए। तभी समाचार आया कि कोलंबिया विश्वविद्यालय उन्हें अगले दीक्षांत समारोह में डॉक्टर ऑफ लॉ की उपाधि प्रदान करेगा। डॉ. अंबेडकर न्यूयॉर्क गए और 5 जून, 1952 को उन्होंने डाक्टरेट की उपाधि ग्रहण की। 12 जनवरी, 1953 का हैदराबाद दक्कन के उस्मानिया विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टरेट ऑफ लिटरेचर की मानद उपाधि प्रदान की।

डॉ. अंबेडकर हालांकि राज्यसभा में तथा अन्य क्षेत्रों में काम कर रहे थे, परंतु उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा था। उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनके मस्तिष्क में बौद्ध दर्शन के विचार कौंधने लगे। सन् 1954 में वे तीसरे विश्व बौद्ध सम्मेलन में भाग लेने रंगून गए। इस सम्मेलन का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने घोषणा की कि वे भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार करेंगे। सन् 1955 में देश भर में यह खबर फैल गई कि डॉ. अंबेडकर अपना धर्म परिवर्तन करेंगे और बौद्ध बन जाएंगे।

डॉ. अंबेडकर को अनेक बौद्ध संगठनों तथा संस्थानों से व्याख्यान देने के लिए निमंत्रण मिलने लगे थे। ये संगठन बुद्ध धर्म स्वीकार करने के उनके निर्णय से बहुत उत्साहित हुए। डॉ. अम्बेडकर ने बंगलौर में बौद्ध गुरूकुल शुरू करने की घोषणा भी की।

मई 1955 से डॉ. अंबेडकर की सेहत और बिगड़ती गई। उनके सारे दांत गिर चुके थे। अब उठने-बैठने तथा चलने-फिरने के

लिए सहारे की जरूरत पड़ने लगी। उन्हें सांस की शिकायत भी हो गई। इतनी खराब सेहत के बावजूद वे घंटों तक लिखने-पढ़ने का काम करते रहते। उनकी पुस्तक *दि बुद्ध एंड हिज गॉस्पेल* पूरी हो गई थी। उन्होंने दो अन्य पुस्तकें *रेवोल्यूशंस एंड काउंटर रेवोल्यूशंस इन इंडिया* और *दि बुद्ध एंड कार्ल मार्क्स* लिखनी शुरू कर दी।

मई 1956 में बुद्ध जयंती पर डॉ. अंबेडकर ने घोषणा कर दी कि वे अक्टूबर में बुद्ध धर्म स्वीकार कर लेंगे। 14 अक्टूबर को अपनी पत्नी तथा लगभग 3 लाख अनुयायियों के साथ वे बौद्ध बन गए। जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया तो वे बोले, "यह सवाल आप अपने आप से और अपने पूर्वजों से क्यों नहीं पूछते कि मैं हिंदू समाज को छोड़कर बौद्ध क्यों बन रहा हूं।"

एक महीने बाद डॉ. अंबेडकर चौथे विश्व बौद्ध सम्मेलन में भाग लेने काठमांडू गए। वहां से भारत लौटने पर वे बुरी तरह थक चुके थे। इसके बावजूद उन्होंने *दि बुद्ध एंड कार्ल मार्क्स* अंतिम अध्याय पूरा किया। उन्होंने 16 दिसंबर, 1956 को मुंबई में अन्य अनेक लोगों के धर्म परिवर्तन का कार्यक्रम तय किया।

परंतु 5 दिसंबर को डॉ. अंबेडकर सोए तो फिर नहीं जागे। नींद में ही उनका देहावसान हो गया। बौद्ध धर्म के अनुसार उन्हें 'निर्वाण' प्राप्त हो गया।

दलित वर्गों के उत्थान तथा भारत के सभी लोगों में समानता कायम करने के जीवन भर के उनके अथक प्रयासों की देश के जन जीवन पर गहरी छाप पड़ी है। उन्होंने भारत को ऐसा संविधान दिया जिसमें धर्म, जाति, मत तथा लिंग के आधार पर भेदभाव किए बिना समानता का प्रावधान है और समूचे देश के लिए समान नागरिक संहिता बनाने की दिशा में प्रयास करने का संकल्प निहित है। विभिन्न कानूनों के अंतर्गत मनुष्य के बीच तथा पुरूषों और महिलाओं के बीच विशेपकर विवाह, तलाक, गोद लेना, उत्तराधिकार तथा शिक्षा के मामले में समानता को बढ़ावा मिला है। कोंकण क्षेत्र में 'खोती' प्रथा और महार 'वतन' प्रथा का बहुत पहले उन्मूलन कर दिया गया था। आज सभी

मंदिर, सार्वजनिक कुए तथा सार्वजनिक स्थान दलितों के लिए खुले हैं और अस्पृश्यता का आचरण अपराध माना जाता है। सभी लोगों के लिए समान नागरिक संहिता की आवश्यकता को भी स्वीकृति मिल रही है। वह दिन अवश्य आएगा जब समूचे भारत के लिए समान नागरिक संहिता संबंधी डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का अंतिम सपना भी साकार हो जाएगा।

"हम भारत के लोग भारत को प्रभुसत्ता संपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणतंत्र बनाने और सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति विश्वास, आस्था और पूजा की स्वतंत्रता, स्तर और अवसर की समानता दिलाने तथा व्यक्ति की गरिमा और देश की एकता व अखंडता कायम रखते हुए उन सबमें भाईचारा विकसित करने के संकल्प के साथ इस संविधान सभा में 26 नवंबर, 1949 को यह संविधान स्वीकार और क्रियान्वित करते हैं और इसे स्वयं को प्रदान करते हैं।"

भारतीय संविधान की प्रस्तावना।